18/1/83

मौजूदा चुनौतियाँ तथा संगठन

जन संघर्ष वाहिनी के

सेवाग्राम शिविर की

रपट

(18-21 जनवरी 1983)

बैठक पूर्वनिश्चित समय से एक दिन देरी से दिनांक 18 जनवरी को प्रारंभ हुई और दिनांक 21 की रात में समाप्त हुई। बैठक में समता युवजन सभा के विजय प्रताप(दिल्ली), छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के ज्ञानेंद्र(उ0प्रदेश), सुशील(बिहार), जनार्दन(बिहार), सतीश(महाराष्ट्र), किशोर क·वि·(महाराष्ट्र), देवकुमार(महाराष्ट्र), सुनंदा(महाराष्ट्र), किशोर दुबे (महाराष्ट्र) जन संघर्ष वाहिनी के रमेशकुमार(बिहार), वंसत पलशीकर(महाराष्ट्र), नरेंद्र बेस(महाराष्ट्र), अनंतराव(महाराष्ट्र), मोहन हिराबाई हिरालाल (महाराष्ट्र), तारक काटे(महाराष्ट्र) तथा किसी संगठन में नहीं लेकिन सम्पूर्ण क्रांति में आस्था रखते हैं ऐसे साथी शिवनारायण आढाव(महाराष्ट्र) तथा संध्या एदलाबादकर(महाराष्ट्र) सहभागी थीं।

बैठक में मौजूदा परिस्थिति को समझने तथा उसके अनुरूप संगठन का ढांचा विकसित करने के बारे में विस्तृत चर्चा हुई।

मौजूदा दौर में आम व्यक्ति अपने आपको बहुत असुरक्षित, असहाय और दिग्भ्रमित महसूस कर रहा है। गरीब इंसान अन्याय एवं शोषण की नई-नई तरकीबों का शिकार हुआ है। दमन के बढ़ने और इंसान की

तरह जिन्दा रहने भर को भी न जुटा पाने के साथ-साथ उसकी परिचित परम्परायें, संस्थाएं, सामूहिकताएं टूटती नजर आ रही हैं। उसे पूरी तरह से निराधार और असहाय बना देने की ताकतें बढ़ी हैं। नैतिक मूल्यों के पतन तथा मानवीय रिश्तों के कमजोर होने से आम इंसान के जीवन में अकेलापन और रसहीनता बढ़ी है। वह अपने आप को उपभोगवादी व्यक्तिवाद की पागल दौड़ में शामिल होने और हार जाने की मजबूरी पाता है।

विश्व के पैमाने पर भी स्थिति कोई खास बेहतर नहीं है। पश्चिमी योरोप और संयुक्त राज्य अमरीका में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था है जरूर लेकिन आम आदमी वहां उपभोगवादी व्यक्तिवाद से उत्पन्न विकृतियों के शिकंजे में है। समाजवादी राष्ट्रों में जन साझेदारी विहीन राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न रूप काबिज हैं। तीसरी दुनिया के देश भी अपनी मुक्ति के प्रयास के दौरान ही किसी न किसी प्रकार की तानाशाही के शिकार हो जाते हैं। रूस और अमरीका एवं अन्य "विकसित" राष्ट्र ही विश्व की विज्ञान तकनीक की दिशा और आर्थिक विकास की नीति तय करते हैं। वे तीसरी दुनिया के देशों को मदद के नाम पर उनके आर्थिक ढांचे को अपनी शोषण और उपभोग की "जरूरतों" के अनुरूप बनाये रखने में अभी तक सफल हैं। बाह्य रूप से आजादी प्राप्त होने पर भी तीसरी दुनिया के बहुत सारे देश आर्थिक परिपेक्ष में पहली और दूसरी दुनिया के बड़े देशों के उपनिवेशों जैसे ही हैं।

देश की सीमाओं के भीतर भी औपनिवेशिक

शोषण पर ही आर्थिक जीवन व्यवहार संगठित किये गये हैं। शहरों का गाँवों से, बड़े उद्योगों का खेती से, देश के महानगर, समृद्ध प्रांतों का पिछले अंचलों से, सांस्कृतिक-सामाजिक रूप से ताकतवर तबकों का "पिछड़ों" के साथ इसी प्रकार संबंध बना हुआ है। देश में एक शासक जमात का निर्माण हुआ है। जिसने पूरे देश को अपना उपनिवेश बना रखा है, इस शासक जमात की तरफ से होने वाले शोषण की दिशा तथा सोच एकरूप है। साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय आर्थिक साम्राज्यवाद के एजेंट की हैसियत रखती है। लेकिन इस शब्द के इस्तेमाल के समय कुछ बातें स्पष्ट करना जरूरी हो जाता है – इतिहास, संस्कृति, परम्परा और राजनीतिक प्रणाली की वजह से भारत एक राष्ट्र है। अंतरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद की ताकतों से राष्ट्रीय अखंडता की रक्षा यहां के सबसे गरीब आदमी के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। हालांकि पूरे मानव समाज की एकात्मा की बात कही जा सकती है, किसी राष्ट्र की एकात्मता उससे ज्यादा अंतरंग और गहरी होती है। इस वजह से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शोषण के ढांचों से लड़ने का कौशल अलग-अलग होगा।

पूरे शोषण के ढांचों को किसी अंतरराष्ट्रीय साजिश के तौर पर नहीं समझा जा सकता बल्कि इसे ऐतिहासिक प्रक्रिया के तौर पर समझना होगा। राष्ट्रीय परिधि और सभी प्रकार के राष्ट्रीय संसाधनों के आधार पर ही शोषण के ढांचों से सीधे संघर्ष हो सकता है। राष्ट्रीय शोषण के ढांचों के खिलाफ संघर्ष के विकास और परिपक्वता के दौरान ही शोषण के ढांचों की समझ बनेगी। समतामूलक लोकतांत्रिक

विकेन्द्रित भारत ही अंतरराष्ट्रीय साम्राज्यवादी शोषण की धारा के लिए गंभीर चुनौती होगा ।

शोषण के ढांचों को ऐतिहासिक प्रक्रिया के तौर पर समझने की बात ऊपर की गयी है । 17वीं सदी के बाद "विकास-आधुनिकता" के सभी आयामों के बारे में पश्चिमी धारा प्रभुत्वशाली रही है । शेष विश्व ने अपनी कमजोरी और विवशता के कारण उसकी नकल की है । विज्ञान, शिक्षा, तकनीक, संस्कृति सभी व्यवहारों में केन्द्रीकरण एक मुख्य मनोवृत्ति रही है । सांस्कृतिक व्यवहारों और व्यंजनाओं के प्रयोग अक्सर पश्चिमी देशों में होते हैं और दुनिया के बाकी हिस्सों में फैलते हैं और नकल किये जाते हैं । "इंसान" और "विश्व-मानव" के बीच के सभी घेरों को यह पश्चिमी सभ्यता तोड़ रही है । नतीजे के तौर पर हर शक्तिशाली घेरा बीच के घेरे को सोख लेना चाहता है । केन्द्रीकरण का ही दूसरा पहलू बनता है - "उपभोगवादी व्यक्तिवाद" सामूहिकता द्वारा लगायी गयी मर्यादाओं तथा उनके द्वारा प्रदान सुरक्षाओं के क्षीण होने से व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में स्पर्धा की एक "पागल दौड़" का माहौल बनता है । इससे हमारी नैतिकता, मूल्य निष्ठा कमजोर होती जा रही है ।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी ने इन प्रवृत्तियों के खिलाफ भारतीय जन-मानस को तैयार करने का प्रयास किया था । आजादी के समय भारत सरकार ने तथा देश के अधिकांश बुद्धिजीवी वर्ग ने "विकास, प्रगति और आधुनिकता" की इस पश्चिमी दिशा को ऐसे स्वीकार किया मानो गांधी भारत में हुए ही न हों । यह मानना चाहिए कि हो सकता

है औपनिवेशिक मानसिकता के इतिहास का बोझ इतना गहरा था कि हमारे "राष्ट्रीय नेतृत्व" ने ईमानदारी पूर्वक इस दिशा को स्वीकार किया ।

लोकतांत्रिक मूल्यों को भी हमने ऐसे उधार ढांचे के माध्यम से मूर्त रूप देने का प्रयास किया जिससे हमारी परम्परा, उसकी लोकतांत्रिक मनीषा को नकारा गया । राष्ट्र और इंसान के बीच की सामूहिकताओं का हनन हुआ । आम आदमी की ताकत घटी । आज व्यस्क मताधिकार जैसे क्रांतिकारी औजार को ही निरर्थक बनाने का प्रयास चल रहा है । कभी-कभी व्यवस्था के शिकंजे से पनपी असहायता और उदासीनता को हम जनता की लोकतंत्र में आस्थाहीनता का भी द्योतक मान लेते हैं, जब कि हमें समझना होगा कि आम जनता अपना मत प्रगट करने के लिए कई बार "उदासीनता" तथा "नजर अंदाज"करना" को प्रभावी हथियार के तौर पर अपनाती है ।

उपरोक्त "विकास" और "आधुनिकता" के खिलाफ गांधी के संघर्ष को सर्वोदय और समाजवादी आंदोलन ने अपने-अपने ढंग से जारी रखने का प्रयास किया था । लेकिन आज ये दोनों धाराएं मृतप्राय: हैं । हांलाकि बिहार जन आन्दोलन ने इसे संपूर्ण क्रांति की धारा के रूप में विकसित कर पुनर्जीवन का बहुत बड़ा अवसर प्रदान किया था, लेकिन दुर्भाग्य है कि विभिन्न कारणों से आज पूरे देश के पैमाने पर इस धारा का कोई असरदार मंच या संगठन नहीं उभर पाया है । जनता पार्टी के विभिन्न खंडों सहित सभी राजनीतिक दल बुनियादी परिवर्तन के लिए असंगत हो गये हैं तथा इंदिरा गांधी की तरह ही आम जनता

को दिग्भ्रमित करने वाले नारों, उसकी कमज़ोरी या विकृतियों को उभारने तथा जोड़-तोड़ एवं शासक शोषक तबकों के सहयोग से सत्ता में आना चाहते हैं। मजदूर आंदोलन भी इस प्रकार की "पागल दौड़" का शिकार है। दत्ता सामंत का नेतृत्व इस ओर इशारा करता है। दलित, आदिवासी, छोटे किसानों एवं मजदूरों के विभिन्न आंदोलन समग्र दृष्टिकोण या संघर्ष का औजार या मंच विकसित नहीं कर पा रहे हैं। लोगों का असंतोष उसमें से उभर रहे छिटपुट विद्रोह और शासन तथा गुंडातत्व द्वारा मिलकर उनका दमन आज की परिस्थिति की विशेषता है।

देश की विविधता, असमान राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्षों को समझने तथा मौजूदा संकट की गहराई को समझने के लिए सघन संवेदनशीलता एवं बड़े नैतिक बल की जरूरत है। तभी हम सभी शोषितों को एक साथ स्पंदित करने वाली भाषा एवं उनका राष्ट्रीय सपना गढ़ पायेंगे।

अमीर या गरीब सभी के लिए सुरक्षा, स्वतंत्रता तथा अस्मिता बुनियादी प्रश्न हैं। बढ़ते दमन, शोषण और बेरोजगारी के इस वातावरण में परिवर्तनवादी धारा के अभाव से उत्पन्न शून्यता की वजह से प्रतिक्रांतिवादी मनोवृत्तियों द्वारा आम आदमी को क्रांतिकारी सब्जबाग दिखाकर किसी न किसी तरह की तानाशाही लागू करने का खतरा बढ़ जाता है। सामान्य परिस्थितियों में परिवर्तनवादी संगठनों के लिए तात्कालिक और बुनियादी मुद्दों में फर्क करना आसान होता है। समाज चलाने को (1) परंपरा बचाने योग्य तत्वों की रक्षा, (2) वर्तमान व्यवस्था

को चलाना, §3§ परम्परा के सड़े तत्वों से लड़ना इन तीन भूमिकाओं में से केवल तीसरी भूमिका को परिवर्तनकारी ताकतें स्वीकार करती रही हैं। लेकिन जब देश में प्रतिगामी ताकतों के काबिज होने का खतरा हो तो उनकी एक ही कृति में तीनों लक्ष्यों की एकात्मता की रक्षा करनी होगी। व्यवस्था चलाने यानी सत्ता की राजनीति में सीधे न पड़ते हुए भी देखना होगा कि प्रतिगामी ताकतें राजनीतिक सत्ता पर काबिज न हो जाए। इसी प्रकार परम्परा के शोषक तथा सड़े पक्षों से लड़ने के साथ-साथ अतीत की निरंतरता को बचाने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की होगी नहीं तो परम्परा की पूंजी के बल पर मौजूदा असुरक्षा के भाव का लाभ उठाते हुए धर्मांधता या किसी भी प्रकार की कट्टरता फैलाकर "खुमैनीशाही" स्थापित करने की कोशिश हो सकती है।

इस प्रकार मौजूदा चुनौती को समझने के लिए समयानुकूल मूल्य निष्ठाओं को परिभाषित करने, वर्तमान की विशिष्टता समझने, अतीत की निरंतरता बनाये रखने और नये सपने संजोने लायक शक्ति और संकल्प एक साथ विकसित करना होगा। इस प्रकार इस चुनौती को समझने और मुकाबला करने के लिए नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सभी पहलुओं को सामने रखना होगा तथा उनकी विशिष्टता, अंतर्संबंधों और एकात्मता तथा जटिलता के अनुरूप संगठन बनाना होगा।

लोकतांत्रिक शासनतंत्र हमने पश्चिम की नकल के रूप में स्वीकारा, यह बात सही है। फिर भी भारत में अब उस की करीब-करीब पचास साल की परम्परा

बन गयी है । कई बातें लोगों की मानसिकता का एक अंग बन गयी है । वयस्क मताधिकार और उसका करीब चालीस साल तक व्यवहार की बात सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण है । इसलिए प्रस्थापित लोकतंत्र में उनकी त्रुटियां होने के बावजूद उसे क्षति न पहुंचाते हुए उसमें सुधार हो, उसमें परिवर्तन लाया जाय यह सावधानी बरतना आवश्यक है । आपात् स्थिति का 1975 से 1977 का अनुभव हमें भूलना नहीं चाहिए । उस समय जो तानाशाही ताकतें प्रभावी हुईं वे आज भी राजकीय, सामाजिक आर्थिक जीवन में क्रियाशील है । तानाशाही का खतरा मौजूद है । इस परिस्थिति का ख्याल रखकर हमें लोकनीति का विकास संपूर्ण क्रांति की दृष्टि से करना है । वर्तमान राजनीतिक गतिविधियों के संदर्भ में हमें सचेत और सक्रिय रहना पड़ेगा । किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित न होते हुए उसके साथ फ्रंट न बनाते हुए अपने ढंग से हमें तानाशाही ताकतों का स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक मुकाबला करना है ।

क्रांतिकारी परिवर्तन की प्रक्रिया क्या हो इसकी हमारी एक समझ है । जीवन के सभी पहलू हम महत्वपूर्ण मानते है और केवल राजनीतिक आर्थिक पहलू को ही महत्व देना ठीक नहीं मानते हैं । यथास्थितिवादी शासनतंत्र को उखाड़ फेंकने के बाद ही नये समाज के गठन की प्रक्रिया शुरू होगी और नए समाज का निर्माण शासनतंत्र के द्वारा नहीं होना है, ऐसा हमारा विश्वास है । शासनतंत्र में बदलाव आना अनिवार्य है । और महत्वपूर्ण भी है । लेकिन यह मात्र एक कड़ी है । यथास्थितिवादी व्यवस्था से और राजतंत्र से संघर्ष तो होता

ही रहेगा । लेकिन सम्पूर्ण क्रांति की दिशा में आगे बढ़ाने वाले सृजनात्मक-रचनात्मक संघर्षात्मक काम जीवन के सभी अंगों को लेकर होते रहें यह सबसे महत्वपूर्ण बात है । सम्पूर्ण क्रांति से प्रतिबद्ध लोगों की विशेषता भी इसी में है ।

सम्पूर्ण क्रांति के निर्माण के काम में लगे अलग-अलग प्रकार के संगठन होंगे । समाज परिवर्तन के काम में युवा शक्ति का एक विशेष योगदान रहना स्वाभाविक है । यथास्थितिवादी भूमिका में स्वपनशील युवा मानसिकता एक अनिवार्य हिस्सा होती है । दो पीढ़ियों के बीच का अंतर और विरोध युवा की खुद की पहचान और अस्मिता-प्रकट के दौर में स्वाभाविक चरण है । इस दृष्टि से युवा संगठन का अपना एक विशेष स्थान और कार्य हम देखते हैं ।

युवा मानस आन्दोलनात्मक कामों में रूचि रखता है । संघर्ष और लड़ाई के प्रति उसे अधिक आकर्षण रहता है । अनेकानेक मुद्दों को लेकर युवकों के बीच काम करने में हमारी एक विशेष दृष्टि यह है कि इस आन्दोलनात्मक और साहसपूर्ण कामों में से स्थिर रूप से पूर्ण समय देकर दीर्घकाल काम करने वाले कार्यकर्त्ता हमें मिलते रहेंगे । छात्र युवा संघर्ष वाहिनी जैसे युवा संगठन इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । युवा संगठन के आम सदस्य मुख्यत: सहभाग की भूमिका निभायेंगे और सक्रिय सदस्य कार्यकर्त्ता की भूमिका निभायेंगे ।

युवा संगठन अपनी ताकत से क्रांति नहीं कर सकता । उसका विशेष कार्य कार्यकर्त्ताओं का "रिक्रयूटिंग", प्रशिक्षण यह है । क्रांति तथा नव-समाज का निर्माण तो लोक संगठनों द्वारा ही होगा

लोक संगठन अनेक प्रकार को होते हैं । कई लोक संगठन समाज के विशिष्ट हिस्से को लेकर के उस हिस्से के निहित स्वार्थों को सामने रखकर काम करते हैं । जब तक ऐसे संगठन अपने विशिष्ट विभागीय निहित स्वार्थों के घेरे के बाहर होकर पूरे समाज के हित की दृष्टि रखकर नहीं सोचते या काम करते तब तक ये संगठन क्रांति की तथा नव-निर्माण की प्रक्रिया में मदद-गार नहीं होते, उल्टे रुकावट भी बन सकते हैं । यह आज हमें देखने को मिलता है । समाज के बुनियादी परिवर्तन की समग्र दृष्टि रखनेवाले, समाज के हित के अविरोध में अपने हित के लिए काम करने वाले कुछ संगठन वर्गीय तथा व्यावसायिक संगठन भी हो सकते हैं । खासकर के जो तबके निचले, शोषित और पीड़ित हैं, (जैसे दलित, असंगठित मजदूर, स्त्रियाँ आदि) उनका संगठन वर्गीय आधार पर हो यह नजदीक के भविष्य काल में जरूरी भी है । बुनियादी परिवर्तन की समग्र दृष्टि रखने वाले ऐसे वर्गीय संगठनों के अलावा समाज के सब तबकों से सम्पूर्ण क्रांति के विचार में आस्था रखने-वाले लोग स्थानीय या आंचलिक आधार पर लोकसंगठन खड़े करेंगे । इसके अतिरिक्त जीवन के विभिन्न अंगों में विशेषज्ञ प्रवृत्तियों में रूचि रखनेवालों के मंच या संगठन होंगे । इनके सामूहिक दबाव से राष्ट्रीय स्तर भी इसी परिवर्तनगामी लोकसंगठन या आन्दोलन की शक्ल निखर सकती है । लोकसंगठनों की भूमिका व्यवस्था परिवर्तन के व्यापक संघर्षात्मक तथा रचनात्मक काम में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगी । युवा अवस्था से गुजरे हुए कार्यकर्त्ताओं का प्रमुख कार्य इन वर्गीय, व्यावसायिक और लोक संगठनों के निर्माण में पूरी सक्रियता से, समरस होकर साझेदारी करने का होगा ।

//

हमारी आस्था लोकनीति में है । कार्यकर्ता संगठन का स्वरूप राजनीतिक दल जैसा नहीं होगा वह "वैनगार्ड पार्टी" भी नहीं है और लोक संगठन उसके "फ्रंट आर्गनायजेशन" नहीं होंगे । कार्यकर्ता संगठन की "राष्ट्रीय समिति" समय-समय पर नीति निर्धारित करे और देशव्यापी कार्यक्रम हाथ में ले और लोक संगठन उसके आदेश के तहत काम करें, यह पद्धति कार्यकर्ता संगठन का रूपांतर राजनीतिक दल में कर देगी । लोक संगठन में विचार और निर्णय की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए और व्यापक हो या स्थानीय कार्यक्रम के संबंध में निर्णय प्रक्रिया में पूरी तरह साझेदारी करेगा, कार्यकर्ता संगठन न उस प्रक्रिया को नियंत्रित करेगा और न वह होशियारी से उसका इस्तेमाल अपने लिए करेगा ।

कार्यकर्ता संगठन मूलत: सहमना लोगों की एक बिरादरी होगी । अपनी सोच समझ बढ़ाने के लिए एक दूसरे की हर तरह से पुष्टि करने के लिए, एक दूसरे की मदद करने के लिए, अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करने के लिए ऐसे संगठन की आवश्यकता है । देशभर में फैला हुआ, एक दूसरे से विचार और कामना के स्तर पर घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ वह एक जाल होगा और इस कारण बिरादरी के अपने घेरे में प्रसंगवश तथा जरूरत के अनुसार सत्याग्रह के स्वरूप की देशव्यापी समानकृती करने की समता भी उसमें होगी कार्यकर्ता संगठन के मूल में एकात्मा का तत्व होगा, परन्तु समरूपता का नकार होगा ।

समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में व्यापक जन आन्दोलन और नेतृत्व यह दो बातें विशेष महत्व की

होती हैं । कार्यकर्ता संगठन से जुड़े हुए कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्रों में सघन रूप से लोक संगठनों के साथ जो काम करते रहेंगे उनके लोक संगठनों में आपसी संयोजन स्थापित होने भर से व्यापक आन्दोलन उभर आयेगा ऐसी बात नहीं है । बड़े इलाके में जैसी परिस्थिति पैदा हो, आम लोगों के हृदय को स्पर्श कर सके और उनके हित को भी ठोस रूप से आगे बढ़ाने की मांग रखी जाय, और कुशल नेतृत्व ऐसी मांग को लेकर के समरूप कार्यक्रम दें । यह बातें मिलकर इकट्ठा हो जाने पर व्यापक आन्दोलन तेजी से फैलता है और प्रस्थापित व्यवस्था को जड़ से हिलाता है । व्यापक आन्दोलन के अनुसार ऊपर से नीचे तक काम चले यह आवश्यक बन जाता है । व्यापक जन आन्दोलन की अपनी ही विशेष गत्यात्मकता होती है । ऐसे आन्दोलन बहुत लम्बे समय तक अकसर नहीं चलते, क्योंकि आन्दोलन के दौरान जन साधारण का रोजमर्रा का जीवन अस्थिर बन जाता है और यह स्थिति वे लंबे समय तक बर्दाश्त नहीं कर सकते ।

ठोस रूप से लोक संगठन सतत काम करते हों तो जन आन्दोलन बहुत ही शक्तिशाली बनता है और उसके परिणाम भी ज्यादा मिलते हैं । उसी तरह जन आन्दोलन के कारण प्राप्त लाभों को स्थायी रूप से हासिल करना, उनके सहारे समाज के ढांचे में परिवर्तन लाना, रचनात्मक कार्यों से लोगों की क्षमता और शक्ति बढ़ाते रहना, तथा असफलताओं के बावजूद धीरज और हिम्मत टिकाए रखना, इन सब दृष्टियों से लोक संगठनों के माध्यम से कार्यकर्ता लोगों के बीच काम करते रहें यह बात बड़ा महत्व रखती है ।

छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का निर्माण बिहार आन्दोलन के गर्भ से हुआ और आज तक मुख्य रूप से आन्दोलनात्मक संघर्ष का काम होता रहा । युवा अवस्था पार करने के बाद और व्यापक आन्दोलन की पृष्ठभूमि के अभाव में बहुत से साथी निजी व्यावसायिक और पारिवारिक जीवन की ओर मोड़ ले रहे हैं, ऐसा अनुभव हो रहा है । मगर इससे भी चिंतित होने की कोई जरूरत नहीं । व्यापक जन आन्दोलन जब फिर से उभर आयेगा तब इनमें से बहुत से साथी अपनी-अपनी जगह पर फिर से सक्रिय बनेंगे यह भरोसा हम रख सकते हैं । संख्या महत्त्व की नहीं है, महत्त्व जन संघर्ष वाहिनी जैसी प्रक्रिया के केन्द्र के तौर पर निरन्तर बने रहना, यह है ।

छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की उम्र सीमा पार किये हुये साथियों का सहयोग अपेक्षित मात्रा में आज नहीं मिल रहा है यह बात रखी गयी । इस पर चर्चा करते हुए जन संघर्ष वाहिनी के साथियों ने कहा कि इस संदर्भ में बिहार और महाराष्ट्र का अनुभव अलग-अलग रहा है ऐसा दिखता है । महाराष्ट्र में छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के काम से सभी ज्येष्ठ साथी आज भी पूर्ण रूप से जुड़े हैं और हर प्रकार से काम में मदद दे रहे हैं ।

बिहार में इस प्रकार का अनुभव यदि न रहा हो तो जन संघर्ष वाहिनी की संगठन प्रक्रिया में रही त्रुटि के कारण नहीं बल्कि वहां के साथियों की मानसिकता से रहा है । चर्चा के दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि जिस विशेष परिस्थिति के कारण छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के साथी और तीसोत्तर साथी

इनके बीच कुछ तनाव निर्माण हुआ था, उस स्थिति में अब काफी सुधार हुआ है। तथा भविष्य में दोनों के बीच अच्छे सहयोग की काफी संभावना दिखाई दे रही है।

अभी तक जन संघर्ष वाहिनी की जो बैठकें हुई उनमें बहुत सारा समय वैचारिक भूमिका के स्पष्टीकरण के लिए दिया गया। यह सारी चर्चा बहुत उपयोगी रही, यही साथियों की राय रही। लेकिन इस पर सहमति हुई कि इसके आगे की बैठकों में साथी जो काम अपने-अपने क्षेत्र में कर रहे हों उनकी रपट और उस पर चर्चा, इसके लिए अधिकतर समय दिया जाय।

अगली बैठक जुलाई 1983 के 5 से 8 तारीख तक मुजफ्फरपुर में होनी तय हुई है। बैठक के आयोजन की जिम्मेदारी रमण (मुजफ्फरपुर) ने ली है। संपूर्ण क्रांति की धारा से जुड़े हुए और भी साथी मुजफ्फरपुर बैठक में सम्मिलित हो इस प्रक्रिया में सहभागी हो सकें इसके लिए सेभी साथियों को कोशिश करनी है।